IJAER/ November-December 2024/Volume-13/Issue-6 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

भारत के कृषि क्षेत्र में घटती जोतों के आकार का एक अध्ययन

Dr.Lalita Singh

Assistant Professor.Dept of Economics

S.R.Educational Institute Firozabad (U.P)

सारांश, भारत आज के विकसित देशों से पुराना देश है। इसकी कृषि कई शताब्दी पहले ही सापेक्षिक दृष्टि से परिपक्वता की स्थिति में पहुंच चुकी थी और उस समय देश में कृषि तथा उद्योग में सन्तुलन था जिससे कृषक वर्ग की दशा उतनी खराब नहीं थी जितती आज है। यह स्थिति अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक बनी रही। भारत में अंग्रेजों की घुसपैठ और उनकी मिलों में बने माल की बिक्री से भारतीय अर्थव्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गई। हथकरघा और चर्खा नष्ट हो गया। सत्य तो यह है कि समस्त भारत में जो कृषि और निर्माण उद्योगों में सहयोग था, वह भी समाप्त हो गया। ब्रिटिश शासकों की औपनिवेशिक नीति के फलस्वरुप इस देश में कृषि का कोई विकास नहीं हुआ। इन शासकों ने जमींदारों का एक नया वर्ग खड़ा कर दिया जिसका मुख्य काम ही किसानों का शोषण करना था।

मुख्य शब्द, किसान, खेतिहर, कृषि, अर्थव्यवस्था आदि।

परिचय, भारत का यह वर्ग मध्यस्थों व परजीवियों का वर्ग था। जींदार कुल कृषि उत्पादन का एक बहुत बड़ा हिस्सा लगान के रूप में काश्तकारों व किसानों से छीन लेते थे जिससे वास्तविक काश्तकार के पास केवल जीवन–निर्वाह योग्य साधन ही बच पाते थे। इसलिए यहां एक ओर उनकी स्थिति बदतर होती चली गई वहीं, साधनों के अभाव में, कृषि में निवेश भी बद नहीं पाया जमींदार चाहते तो कृषि में निवेश कर सकते थे परन्तु वे अधिकतर साधनों का अपव्यय विलासिता की उपभोग वस्तुओं पर कर देते थे। इस प्रकार, स्वतन्त्रता से पूर्व कृषि व्यवसाय श्जीवन–निर्वाह का साधन मात्र बनकर रह गया। जमींदार और महाजन ऋणों के भुगतान की आड़ में किसानों की जमीन हडप जाते थे। इससे खेतिहर मजदूरों का एकनया वर्ष पैदा हो गया। ये लोग अन्य किसानों की भूमि पर मजदूरी करने लगे। मजदूरी कास्तर बहुत ही कम होता था। किसानों का एक बहुत बड़ा वर्ग कृषि से केवल जीवन–निर्वाह योग्य आय ही अर्जित कर पाता था। यह स्थिति काफी समय तक बनी रही। वस्तुतः 1966 के बाद हरित क्रान्ति के आगमन से स्थिति में कुछ बदलाव आया और कुछ किसानों ने कृषि

को व्यावसायिक आधार पर अपनाया। अब हम विस्तार के साथ विचार करेगें कि भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि एवं जोतों के आकार का क्या स्थान है।

1. राष्ट्रीय आय में कृषि का भाग –

प्रथम विश्वयुद्ध के समय भारत की राष्ट्रीय आय का लगभग दो तिहाई भाग कृषि से प्राप्त होता था। इसका प्रमुख कारण औद्योगिक विकास का न होना था। स्वतन्त्रता के बाद, विशेष तौर पर योजनाओं को लागू करने के बाद से, द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्रों के कारण कृषि का हिस्सा लगातार कम होता गया है। 1950–51 में कुल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 59.2 प्रतिशत था जो कम होते होते 1990–91 में 34.9 प्रतिशत था 2008–09 में 26.1 प्रतिशत रह गया (1993–94 की कीमतों पर)। यह तथ्य कि आज भी राष्ट्रीय आय का एक चौथाई से अधिक हिस्सा कृषि से प्राप्त होता है, भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कृषि एवं पशुधन के महत्व को स्पष्ट करता है।

राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा अक्सर आर्थिक विकास का सूचक माना जाता है। यद्यपि सम्पन्न देशों में कृषि बहुत विकसित है तथापि इन देशों की कृषि पर निर्भरता बहुत कम है। उदाहरण के लिए, अमेरिका और इंग्लैंड में कृषि केवल राष्ट्रीय आय का 2 प्रतिशत प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है कि जैसे–जैसे कोई देश विकास करता है उसकी कृषि पर निर्भरता कम होती जाती है।

2. रोजगार की दृष्टि से कृषि का महत्व –

1951 में कार्यकारी जनसंख्या का 69.5 प्रतिशत कृषि में लगा हुआ था। 2009 में यह प्रतिशत संख्या थोडा गिरकर 60 हो गई। परन्तु जनसंख्या में तेज वृद्धि होने के कारण, कृषि में लगे हुए लोगों की वास्तविक संख्या में बहुत बढ़ोत्तरी हुई है। अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों का उपयुक्त विकास न होने के कारण उनमें रोजगार अवसरों में वृद्धि बहुत कम हो पाई है जिससे मजबूरन बहुत से लोगों को कृषि पर काम करना पड़ा है हालांकि भूमि पर उनकी सीमांत उत्पादकता बहुत कम है। इससे अल्परोजगार तथा छिपी हुई बेरोजगारी जैसी समस्याएं पैदा होती है।

अधिकतर अल्प–विकसित देशों में कार्यकारी जनसंख्या की कृषि पर अत्यधिक निर्भरता दिखाई देती है। उदाहरण के लिए 1999 में बांग्लादेश की कार्यकारी जनसंख्या का 57 प्रतिशत, पाकिस्तान में 48 प्रतिशत और चीन में 68 प्रतिशत कृषि में लगा हुआ था। इसके विपरीत, विकसित देशों में जनसंख्या का एक बहुत छोटा–सा भाग कृषि में लगा हुआ है। उदाहरण के लिए 1999 में जापान और फ्रांस में

कार्यकारी जनसंख्या का केवल 4 प्रतिशत, तथा इंग्लैंड व अमरीका में मात्र 2 प्रतिशत कृषि कार्यों में लगा हुआ था।

3. औद्योगिक विकास के लिए कृषि का महत्व –

भारत में औद्योगिक विकास की दृष्टि से कृषि का महत्व बहुत महत्व है। भारत में महत्वपूर्ण उद्योगों को जिनमें सूती वस्त्र, जूट, चीनी तथा वनस्पति उद्योग उल्लेखनीय है, कृषि से ही कच्चे पदार्थों की प्राप्ति होती है। औद्योगिक क्षेत्र में लगे हुए लोगों के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन की जिम्मेदारी कृषि क्षेत्र पर ही है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र में विनिर्माण उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बाजार भी होता है। अभी भारतीय किसानों और खेतिहर मजदूरों की आय का स्तर काफी नीचा है इसलिए इस क्षेत्र में तैयार वस्तुओं के लिए बाजार सीमित है। कृषि विकास से भारतीय उद्योगों के लिए ग्रामीण क्षेत्र में बाजार विस्तृत होना स्वाभाविक है।

4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और कृषि –

बहुत लम्बे समय तक तीन कृषि वस्तुओं (चाय, पटसन तथा सूती वस्त्रों) का भारत की निर्यात आय में 50 प्रतिशत हिस्सा था। यदि हम अन्य कृषि वस्तुओं जैसे कॉफी, तम्बाकू, काजू, वनस्पति तेल, चीनी इत्यादि को भी शामिल कर लें तो कृषि का निर्यात आय में हिस्सा 30 से 50 प्रतिशत तक पहुंच जाता है। कृषि वस्तुओं पर इतनी अधिक निर्भरता भारत के अल्प विकास को प्रतिलक्षित करती थी। आर्थिक विकास के साथ–साथ उत्पादन में विस्तार व विविधीकरण हुआ जिससे निर्यात आय में कृषि का हिस्सा कम हुआ । उदाहरण के लिए 1960–61 में कुल निर्यातों में कृषि निर्यातों का हिस्सा 44.2 प्रतिशत था। यह गिरते–गिरते 1980–81 में 30.7 प्रतिशत तथा 2008–09 में 13.4 प्रतिशत रह गया। जहां तक आयातों का संबंध है, इनमें मुख्य हिस्सा पूंजी वस्तुओं व औद्योगिक मशीनरी का रहा है। लेकिन कुछ वर्षों में खाद्यान्नों की कमी को पूरा करने के लिए भारी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा है। इसके अलावा, भारत डेरी उत्पादों, फलों, सब्जियों, वनस्पति तेलों तथा कच्चे माल का भी आयात करता है।

5. भारतीय के उपभोग में कृषि पदार्थों का स्थान –

साधारण भारतीयों का जीवन स्तर नीचा है। इसलिए वे आय का बड़ा भाग खाद्य पदार्थों पर व्यय करते हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत में ग्रामीण परिवार अपने कुल व्यय का लगभग 64 प्रतिशत तथा शहरी परिवार अपने कुल व्यय का लगभग 56 प्रतिशत खाद्य पदार्थों पर व्यय करते

हैं। इस प्रकार, खाद्य पदार्थों पर व्यय का पारिवारिक बजटों में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हिस्सा है। जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति निजी उपभोग में वृद्धि की सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर योजना आयोग ने कृषि पदार्थों की मांग में 4.7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का अनुमान लगाया है। इस समय देश में खाद्य सम्बन्धी आत्मनिर्भरता उसी समय तक रह सकती है जबकि कृषि उत्पादन में कम से कम 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो। ऐसा न होने पर मांग और पूर्ति में असन्तुलन रहेगा।

1950–51 के पश्चात् कृषि विकास –

चाहे स्वतन्त्रता पूर्व काल के लिए कृषि सम्बन्धी आँकड़े बहुत ही अविश्वसनीय और दोषपूर्ण हैं फिर भी इनसे यह संकेत मिलता है कि 20 वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में कृषि–उत्पादन में, जनसंख्या की तुलना में नाममात्र वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ, श्री जे.पी. भट्टाचार्य के अनुसार 1901 और 1946 के बीच जनसंख्या में 38 प्रतिशत की वृद्धि हुई किन्तु कृषि आधीन भूमि के क्षेत्रफल में केवल 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सभी फसलों की औसत उत्पादिता में 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अतः जनसंख्या की वृद्धि खाद्य उत्पादन की वृद्धि से काफी हद तक अधिक रही। उस समय यह विश्वास किया जाता है था कि भूमि की उर्वरता में गिरावट हो रही है और कृषि व्यवहारों की कुशलता गिर रही है। इस विश्वास का प्रतिबिम्ब भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और अधिक अन्न उगाओं जांच समिति के निष्कर्षो में मिलता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् कृषि–विकास –

1950–51 के पश्चात् आर्थिक आयोजन आरम्भ करने के पश्चात् और कृषि विकास पर विशेष बद देने (खासकर 1965 के बाद) के कारण अवरुद्ध कृषि की प्रवृत्ति पलट की गई।

(1) कृषि आधीन क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि हुई।

(2) प्रति हैक्टेयर उत्पादन (अर्थात् कृषि उत्पादिता) में भी लगातार वृद्धि हुई और

(3) क्षेत्रफल में वृद्धि के साथ–साथ प्रति हैक्टेयर उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्रुप सभी फसलों के कुल उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति पाई गई।

इस सम्बन्ध में दो बातों का ध्यान रखना होगा। पहली, भारत में कृषि उत्पादन पर प्रकृति द्वारा निर्धारित वर्षा एवं मौसम का भारी प्रभाव पढ़ता है। कृषि आधीन क्षेत्र, औसत प्रति हैक्टेयर उत्पादन और कुल उत्पादन में साल–दर–साल उच्चावचन होता रहता है। मौसम सम्बन्धी प्रभाव को अलग करना बहुत कठिन है जिससे कृषि विकास पर केवल कृषि आदानों और तकनालॉजी के प्रभाव को

ऑका जा सके। यह बात विशेषकर सरकारी दावों के संदर्भ में महत्व रखती है जिनके अनुसार जीव रसायन तकनालॉजी की कामायाबी को साधारण तया हरित क्रान्ति की संज्ञा दे दी जाती है।

दूसरे, जिस अवधि पर हम विचार कर रहे है उसे बड़ी सुविधा से दो अवधियों में विभाजित किया जासकता है अर्थात् हरित क्रान्ति के बाद का काल (1965–1997)

1949–50 के पश्चात् क्षेत्रफल की वृद्धि –

1949–50 के पश्चात् सभी फसलों के आधीन क्षेत्रफल में वृद्धि दी गई है। 1950–65 की हरित क्रान्ति से पूर्व की अवधि के दौरान अतिरिक्त भूमि काश्त में लाई गई और सिंचाई सुविधाओं के विस्तार द्वारा बंजर भूमियों में भी खेती की जाने लगी। 1950–65 के दौरान सभी फसलों के आधीन क्षेत्रफल में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई और क्षेत्रफल की वार्षिक वृद्धि दर सभी फसलों में 1.6 प्रतिशत, खाद्यानों में 1.4 प्रतिशत और खाद्य–भिन्न फसलों में 2.5 प्रतिशत रही।

141964–65 से पूर्व सभी फसलों में बिना किसी अपवाद के, कृषि आधीन क्षेत्रफल की वृद्धि हुई। इसका अभिप्राय यह कि खेती को सीमान्त एवं बंजर भूमियों में भी बढ़ाया गया और कुछ परिस्थितियों में तो इसेव्यर्थ–भूमियों और बन आधीन भूमियों में भी बढ़ाया गया। आलू की खेती में इस अवधि में सबसे अधिक क्षेत्र वृद्धि हुई अर्थात् 4.4 प्रतिशत प्रति वर्ष की ओर इसके बाद नम्बर था भन्ने भा–3.3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि। खाद्यान्नों में बेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में 1.7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि रिकार्ड की गई।

1967–68 के पश्चात् कृषि क्षेत्र में विस्तार की गुंजाइश धीरे–धीरे घटती गई। हरित क्रान्ति के बाद के काल (1968–97) में, क्षेत्रफल में वार्षिक वृद्धि–दर काफी कम थी – सभी फसलों में 0.3 प्रतिशत खाद्यान्नों में 0.1 प्रतिशत और खाद्य भिन्न फसलों में 0.7 प्रतिशत ।

1968–97 की अवधि के दौरान, केवल चावल की फसल के आधीन क्षेत्रफल में 12 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में 77 प्रतिशत वृद्धि हुई। जबकि गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल की वार्षिक वृद्धि दर केवल 0.5 प्रतिशत थी जबकि गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में वृद्धि स्पष्टतः जीव–रसायन तकनालॉजी के कृषि में लागू करने का परिणाम थी। परन्तु यह वृद्धि मोटे अनाजों और दालों की कीमत पर थी। इन दो अवधियों में फसलों के ढांचे में परिवर्तन होता रहा है। कुल कृषि आधीन क्षेत्रफल में गेहूँ का भाग 8. 5 प्रतिशत से बढ़कर 13.7 प्रतिशत हो गया। सिंचाई आधीन क्षेत्रफल में गेहू का भाग 15 प्रतिशत से बढ़कर 38 प्रतिशत हो गया।

खाद्य भिन्न फसलों में आलू के आधीन क्षेत्रफल में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई (इस अवधि में 17.5 प्रतिशत की वृद्धि और वार्षिक वृद्धि दर 3.9 प्रतिशत) और बागान फसलों में यह वृद्धि 67 प्रतिशत थी।

प्रति हैक्टेयर उत्पादिता में वृद्धि –

मोटे तौर पर स्वतन्त्रतापूर्व काल का मुख्य लक्षण सामान्य रुप में कृषि–उत्पादिता में गिरावट और विशेषकर खाद्यान्न–प्राप्ति के बाद के पहले तीन वर्षो में एक सीमा तक बनी रही जिसे 1950–51 में आयोजन द्वारा पलटा गया। सिंचाई में विस्तार और कृषि की सघन प्रणाली के उपयोग और साथ ही आधुनिक कृषि व्यवहारों जिनमें संकर बीज भी शामिल थे, द्वारा सभी फसलों के प्रति हैक्टेयर उत्पादन में धीरे–धीरे और लगातार वृद्धि प्राप्त की गई।

चूंकि विभिन्न फसलों की उत्पादिता के ऑकड़ों को 'खाद्य–भिन्न फसलों' में एक ही रूप में एकत्र करना व्यवहार्य नहीं, इसलिए कुछ चुनी हुई फसलों के लिए प्रति हेक्टयेर उत्पादिता के आँकड़े दिए गए हैं। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, मानसून और मौसम की परिस्थितियों का प्रति हैक्टेयर औसत उत्पादिता में उच्चावचन न केवल उन्नत कृषि तकनीकों के प्रभाव को व्यक्त करते हैं परन्तु प्राकृतिक कारणतत्वों के प्रभाव को भी जाहित करते हैं।

हरित क्रान्ति से पूर्व की अवधि के दौरान, चावल की उत्पादिता में काफी प्रभावी वृद्धि–दरें रिकार्ड की गयीं– 1949–50 में 7 क्विन्टल प्रति हैक्टेयर से 1964–65 में लगभग 11 क्विन्टल तक। वार्षिक वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत थी। चावल की तुलना में गेहूँ की उत्पादिता में वृद्धि–दर इस अवधि के दौरान मर्यादिति थी। उदाहरणार्थ, गेहूँ के बारे में प्रति हैक्टेयर उत्पादिता 1949–50 में 6.6 क्विन्टल से बढ़कर 1964–65 में 9.1 क्विन्टल हो गई। खाद्य–भिन्न फसलों फसलों में, रुई एवं गन्ने की उत्पादिता में मर्यादित वृद्धि रिकार्ड की गई।

दूसरी अवधि के दौरान, गेहूँ में सबसे अधिक आश्चर्यजनक वृद्धि दर (3.2 प्रतिशत) और आलू में 3.0 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त की गई। गेहूँ का प्रति हैक्टेयर उत्पादन अब 26.2 क्विन्टल है जबकि चावल का इसकी तुलना में केवल 18.8 क्विन्टल है। परन्तु चावल में भी इस अवधि के दौरान 1.9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की गई। अन्य सभी फसलों में प्रति हैक्टेयर उत्पादिता में वृद्धि या तो मर्यादित थी, या बहुत ही कम थी। उदाहरणार्थ मोटे अनाजों की उत्पादिता में 2.3 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई। दूसरी ओर दालों की वृद्धि दर 0.5 प्रतिशत और तिलहनों की औसत वार्षिक वृद्धि

दर केवल 1.4 प्रतिशत रिकार्ड की गई। इससे साफ जाहिर है कि नयी जीव–रसायन तकनालॉजी गेहूँ के उत्पादन के लिए विशेष रूप में उचित थी किन्तु यह अन्य फसलों के लिए प्रभावी न बन पाई।

(क) भारत की मुख्य खाद्य एवं खाद्य भिन्न फसलों की वास्तविक उत्पादिता दी गई है और तुलना के उद्देश्य से (ख) प्रत्येक विशिष्ट फसल के लिए विश्व के सबसे बड़े उत्पादक देश की वास्तविक उत्पादिता दी गई है और (ग) विश्व में प्रति हैक्टेयर अधिकतम उत्पादिता दी गई है।

चाबल और गेहूँ दोनों के संदर्भ में, विश्व में सबसे अधिक उत्पादिता 75 क्विन्टल प्रति हैक्टेयर क्रमशः उत्तर कोरिया और आयरलैण्ड में रिकार्ड की गई। चीन जो विश्व का सबसे बड़ा चावल और गेहूँ का उत्पादक है की औसत उत्पादिता क्रमशः 55 क्विन्टल है। इसके विरुद्ध भारत की चावल और गेहूँ की वार्षिक औसत उत्पादिता तुलना की दृष्टि से बहुत कम है चावल में 17.5 क्विन्टल और गेहूँ में केवल 22.7. क्विन्टल है। चावल भारत की मुख्य फसल है और इसकी वार्षिक उत्पादिता उत्तर कोरिया की तुलना में एक चौथाई और चीन की तुलना में एक तिहाई है। गेहूँ और आलू – ये दोनों फसलें जिनमें पिछले 30 वर्षों में अधिकतम वृद्धि रिकार्ड की गई, में भी भारत में औसत उत्पादिता इन फसलों की अधिकतम उत्पादिता की तुलना में बहुत कम है। भारत में आलू की प्रति हैक्टेयर औसत उत्पादिता 162 क्विन्टल है जबकि इसकी तुलना में वैल्जियम – लब्जमबर्ग में 443 क्विन्टल वार्षिक उत्पादिता रिकार्ड की गई।

यदि हम भारत की प्रत्येक फसल की औसत उत्पादिता की तुलना विश्व की अधिकतम उत्पादिता के साथ करें, तो यह ज्ञात होता है कि भारत में उत्पादिता, विश्व के अधिकतम के 14 से 20 प्रतिशत की अभिसीमा में है। इससे जाहिर है कि औसत उत्पादिता बढ़ाने की काफी गुंजाइश है और यह भारत के लिए एक चुनौती भी है।

चीन में 1965 और 1988 के दौरान चावल की प्रति हैक्टेयर उपज में 94 प्रतिशत वृद्धि रिकार्ड की गई, जबकि भारत में यह वृद्धि केवल 50 प्रतिशत थी और इसी प्रकार गेहूँ की उत्पादिता में इस अवधि में चीन में 233 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि भारत में यह 150 प्रतिशत थी। इसी तरह रुई की उत्पादिता में चीन की 250 प्रतिशत की वृद्धि के विरुद्ध भारत में उत्पादिता में केवल 63 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अतः यह बात साफ हो जाती है कि हरित क्रान्ति और आधुनिक तकनॉलाजी अपनाने के

परिणामस्वरूप केवल भारत में ही उत्पादिता में वृद्धि नहीं हुई बल्कि यह वृद्धि भारत में अन्य विकासशील देशों जैसे चीन की तुलना में बहुत कम थी।

भारत में अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों की विभिन्न फसलों में उत्पादिता–क्षमता दी गई है। जाहिर है कि वास्तविक उत्पादिता और विभिन्न फसलों में संभावित उत्पादिता–क्षमता में अन्तर बहुत अधिक है। यदि भारत चीन द्वारा प्राप्त औसत उत्पादिता तक ही पहुंच जाए तो भारत प्रतिवर्ष 2,500 से 3,500 लाख टन खाद्यान्न उत्पन्न कर सकता है जबकि 1997–98 में इसका उत्पादन 1,930 लाख टन था। यह भारत के लिए एक अवसर भी है और चुनौती थी।

कुछ कृषि–अर्थ शास्त्रियों ने भारत द्वारा ठण्डे देशों द्वारा प्राप्त उत्पादिता स्तरों तक पहुंचने की संभावना में सन्देह व्यक्त किया है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ हद तक उत्पादिता में वृद्धि की जा सकती है, परन्तु यह उम्मीद रखना कि यह 3 से 5 गुना बढ़ाई जा सकती है व्यवहार्य नहीं है। कारण यह है कि भारत में गेहूँ, सम्बन्धी अर्द्ध बौनी अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों की अवधि 140 दिन है जबकि ठण्डे देशों में 10 महीने की गेहूँ की फसल से उच्च उत्पादिता प्राप्त की जा सकती है। एक वर्ष की अवधि में भारतीय किसान, एक और चावल की फसल या आलू अथवा फली की फसल या कोई अल्पावधि सब्जी की फसल उगा सकता है। अतः भारत में किसान एवक फसल की अपेक्षा बहु–फसल प्रणाली की ओर परिवर्तित होने के कारण पूरे वर्ष भर में उत्पादिता का ध्यान रखता है, न कि किसी एक फसल से प्राप्त प्रति हैक्टेयर उत्पादिता का। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डा. एसम. एस. स्वामीनाथन इस बात पर अवैज्ञानिक है, परन्तु यदि समग्र फसल–प्रणाली के आधार पर तुलना की जाए तो यह अधिक वैज्ञानिक होगा। अतः उत्पादिता में तीव्र अन्तर इन कारण तत्वों को दृ ष्टि में नहीं रखते। 1949–50 के पश्चात् उत्पादन की वृद्धि दरें किसी भी कृषि वस्तु का उत्पादन क्षेत्रफल एवं प्रति हैक्टेयर उत्पादन के संयुक्त प्रभाव को व्यक्त करता है। और बात भारत के संदर्भ में भी लागू होती है।

निष्कर्ष, फसली अवधि (1950–65) के दौरान, खाद्यान्न के उत्पादन में 3.2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त हुई। मुख्य अनाजों अर्थात् चावल और गेहूं में उच्च वृद्धि दरें रिकार्ड की गई अर्थात् क्रमशः 3.5 प्रतिशत और 4 प्रतिशत किन्तु मोटे अनाजों और दालों में सापेक्षतः कम वृद्धि दरें रिकार्ड की गई। खाद्य भिन्न फसलों के उत्पादन में 3.5 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर प्रभावी ही मानी जा सकती है। 1965 के पश्चात् सरकार ने जीव–रसायन टेकनॉलाजी कृषि में इस उम्मीद से चालू की और इसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन एवं कृषि उत्पादिता में उन्नति को बढ़ाने में कोई बहुत आश्चर्यजनक

भूमिका नहीं निभाई, इसके सिवाए कि गेहूँ के उत्पादन में 5.9 प्रतिशत और आलू के उत्पादन में 5.1 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई और अन्य सभी फसलो के उत्पादन में वृद्धि दर निम्न ही रही। मोटे अनाजों और दालों में तो यह वृद्धि नाममात्र ही थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Agaral, A.N. (1982). The economics of under development, Oxford University Press, Bombay.
- Base, Gupta, Ray (1994). Population Statistics, Statistics Society, Calcutta.
- Chauhan, D.S., Studies in Utilization of Agricultural Land.
- Daya Kishan (1991). The New Agricultural Strategy New Hights, Daryaganj, Delhi.
- Singh, D. Bright, Economics of Development
- Herold, G. Heldrow, Agricultural Policy of the United Sate.
- Daya Kishan (1995). The New Agricultural Strategy New Heights, Daryaganj, Delhi.